

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 19: शुकदेव का आगमन

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

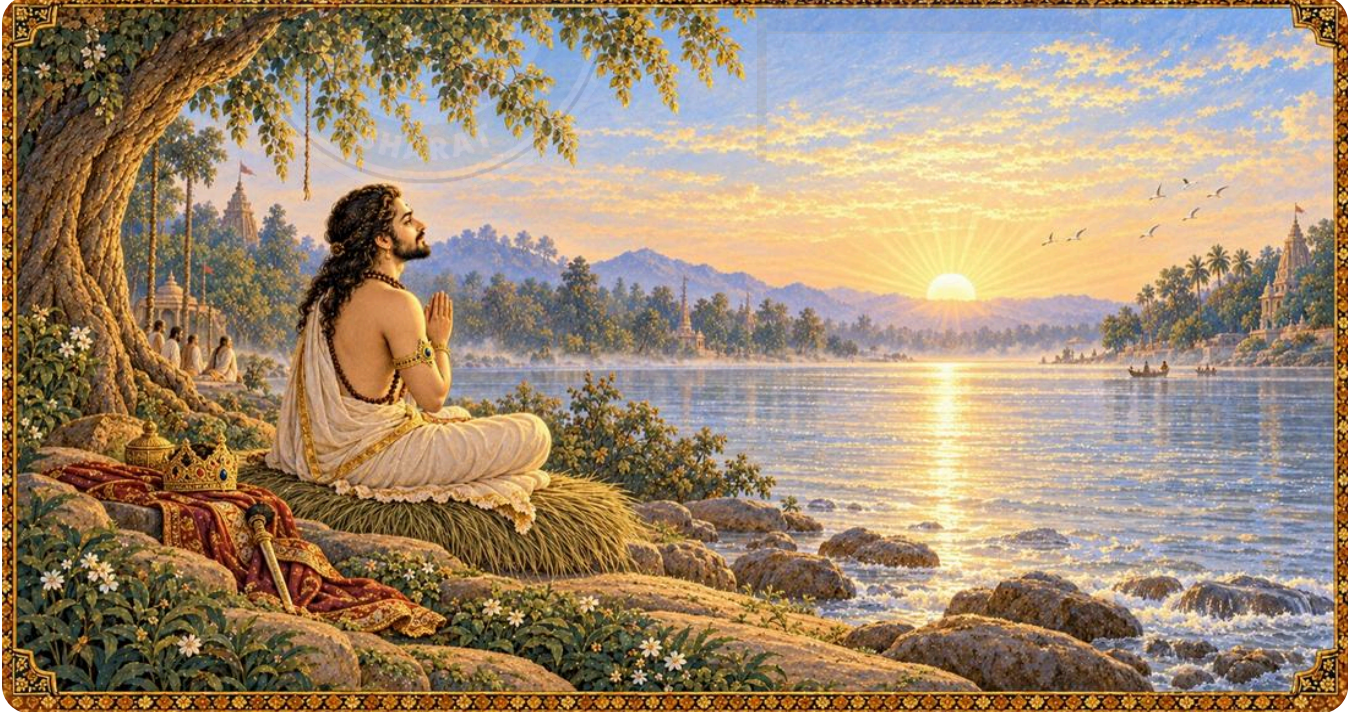
श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



दोनों लोकों का त्याग कर, राजा परीक्षित पवित्र गंगा के तट पर बैठते हैं, अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणकमलों में स्थिर करके आमरण अनशन का व्रत लेते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

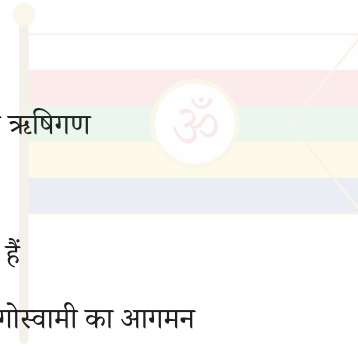
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। प्रथम स्कन्ध के इस उन्नीसवें और अन्तिम अध्याय में एक महान् सम्राट् एक शाप को ही ईश्वर तक पहुँचने का द्वार बना लेता है। यह जानकर कि उसके पास जीने के लिए केवल सात दिन शेष हैं, राजा परीक्षित न तो काँपते हैं और न ही किसी उपचार का उपाय ढूँढ़ते हैं। वे अपना मुकुट उतार देते हैं, पवित्र गंगा के तट पर विराजमान होते हैं, और अपने शेष दिन उपवास, प्रार्थना और भगवान् की कथा-श्रवण में बिताने का संकल्प लेते हैं। उस तट पर उस युग के श्रेष्ठतम ऋषि उमड़ पड़ते हैं, और अन्त में वही आते हैं जिनकी प्रतीक्षा में सम्पूर्ण शास्त्र खड़ा था — युवा, भगवद्-मग्न मुनि श्रीशुकदेव गोस्वामी। राजा के एक हार्दिक प्रश्न के साथ, आगे की सम्पूर्ण कथा का मंच सज जाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 19 (उन्नीसवाँ अध्याय) — प्रथम स्कन्ध का समापन अध्याय
- अध्याय-शीर्षक: श्रीशुकदेव गोस्वामी का आगमन
- मुख्य वक्ता: पूज्य सूतजी, उग्रश्रवा (कथावाचक); राजा परीक्षित; समागत ऋषिगण
- मुख्य श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में
- मुख्य स्थल: गंगा का दक्षिणी तट, जहाँ परीक्षित आमरण अनशन पर बैठते हैं
- केन्द्रीय विषय: परीक्षित का आमरण अनशन का व्रत तथा मुनि श्रीशुकदेव गोस्वामी का आगमन
- मुख्य श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 1–40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पूर्व अध्याय का सन्दर्भ

अठारहवें अध्याय में, आखेट के समय थके, प्यासे और उत्तेजित राजा परीक्षित ध्यानमग्न मुनि शमीक के आश्रम में पहुँचे और स्वागत न पाकर, क्रोध के एक क्षण में मौन मुनि के कंधे पर एक मृत सर्प डाल दिया। मुनि के युवा पुत्र शृंगी ने यह अपमान सुनकर राजा को शाप दिया कि सात दिनों के भीतर तक्षक नाग के दंश से उसकी मृत्यु हो जाएगी। सौम्य शमीक अपने पुत्र की उतावली पर शोकाकुल हुए। इसी शाप के सिर पर मँडराते हुए उन्नीसवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

राजा का पश्चात्ताप

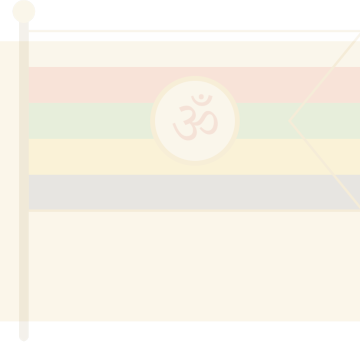
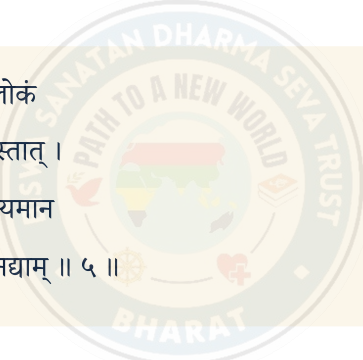
राजधानी लौटकर राजा को कहीं शान्ति न मिली। वे बारम्बार उस कृत्य को मन में दोहराते रहे, अत्यन्त व्यथित होकर स्वयं को धिक्कारते रहे कि उन्होंने एक “नीच मनुष्य के समान” उस निर्दोष, गूढ़ तेजवाले ब्राह्मण के साथ व्यवहार किया। शाप से क्रुद्ध होने के बजाय, उन्होंने आने वाली विपत्ति को एक उचित प्रायश्चित्त के रूप में स्वागत किया, और यही प्रार्थना की कि वह सीधे उन्हीं पर आ पड़े ताकि वे फिर कभी ऐसा अपराध करने का साहस न करें। उन्होंने सोचा — क्रुद्ध ब्राह्मण-कुल रूपी अग्नि आज ही उनके राज्य, सेना और कोश को भस्म कर दे, ताकि वे भविष्य में ब्राह्मणों, देवताओं और गौओं के प्रति कभी कोई पापपूर्ण विचार न रखें।

इसी चिन्तन में लीन थे कि उन्हें समाचार मिला कि मुनि-पुत्र के शाप से प्रेरित मृत्यु तक्षक के नाम से उनकी प्रतीक्षा कर रही है। और यहीं राजा की महानता प्रकट होती है: उन्होंने तक्षक के अग्नि-सम विष को विपत्ति नहीं, अपितु वरदान माना, क्योंकि उन्होंने देखा कि यह संसार में गहरे आसक्त पुरुष में शीघ्र ही वैराग्य जगा देगा। एक साधारण मनुष्य मृत्यु से भागता; परीक्षित उसकी ओर एक गुरु की भाँति बढ़े।

गंगा-तट पर एक व्रत

यह निश्चय करके कि यह लोक और परलोक — दोनों ही त्याज्य हैं, और श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को सबसे श्रेष्ठ मानकर, राजा आमरण अनशन के संकल्प के साथ गंगा-तट पर बैठ गए।

अथो विहायेममुं च लोकं
विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥



अथो विहायेमम् अमुं च लोकं विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् कृष्णाङ्घ्रि-सेवाम् अधिमन्यमान उपाविशत् प्रायम् अमर्त्य-नद्याम्

अर्थ: इस लोक और परलोक — दोनों को, जिन्हें वे पहले ही त्याज्य निश्चित कर चुके थे, त्यागकर, और श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को सबसे बढ़कर मानकर, वे आमरण अनशन हेतु उस अमर नदी (गंगा) के तट पर बैठ गए। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 5)

उन्होंने गंगा को सकारण चुना। उनका जल समस्त अन्य जलों से श्रेष्ठ है, क्योंकि वह श्रीकृष्ण के चरणों की रज तथा वहाँ अर्पित सुन्दर तुलसीदल से मिश्रित है, और इसीलिए वह ऊपर-नीचे के समस्त लोकों को, उनके अधिष्ठाता देवताओं सहित, पवित्र करता है।

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-
कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्
कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

या वै लसच्छ्री-तुलसी-विमिश्र- कृष्णाङ्घ्रि-रेण्व-अभ्यधिकाम्बु-नेत्री पुनाति लोकान् उभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः

अर्थ: भला कौन मरणासन्न व्यक्ति उस गंगा का आश्रय न लेगा, जिसका जल श्रीकृष्ण के चरणों की रज और ताज़ी तुलसी से मिश्रित होकर परम पवित्र है, और जो अधिष्ठाता देवताओं सहित समस्त लोकों को पवित्र करती है? (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 6)

इस प्रकार निश्चय करके, पाण्डु-वंशी राजा ने समस्त आसक्ति त्याग दी, मुनि-व्रत धारण किया, और अपने मन को मुक्ति-दाता मुकुन्द के चरणों में अनन्य भाव से स्थिर कर दिया।

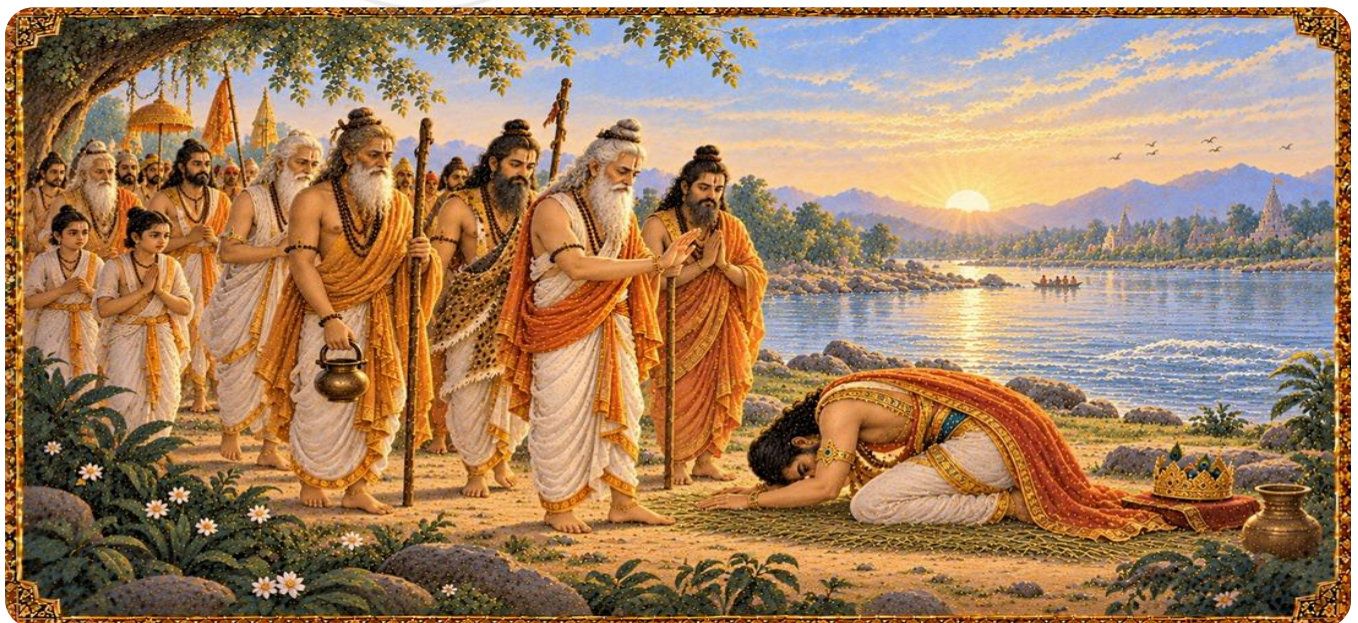
इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः
प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।
दधौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो
मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७ ॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णु-पद्याम् दधौ मुकुन्दाङ्घ्रिम् अनन्य-भावो मुनि-व्रतो मुक्त-समस्त-सङ्गः

अर्थ: इस प्रकार भगवान् विष्णु के चरणों से प्रवाहित गंगा के तट पर आमरण अनशन का निश्चय करके, समस्त आसक्ति से मुक्त तथा मौन एवं तप के व्रत में स्थित पाण्डु-वंशी ने अपने मन को अनन्य भाव से मुकुन्द के चरणों में लगा दिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 7)

महर्षियों का समागम

सम्राट् के इस पावन संकल्प का समाचार शीघ्र फैल गया, और उस तट पर पृथ्वी के श्रेष्ठतम ऋषि, अपने-अपने शिष्यों सहित, आ पहुँचे — वे सन्त जो जहाँ जाते हैं वहीं पवित्रता ले आते हैं, क्योंकि पवित्र आत्माएँ उन तीर्थों को भी पवित्र कर देती हैं जिनके वे दर्शन करती हैं। यह समागम मानो उस युग के आध्यात्मिक वैभव की नामावली ही है।



उस युग के श्रेष्ठतम ऋषि — अत्रि, वसिष्ठ, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, व्यास, नारद और अनेक अन्य — अपने शिष्यों सहित गंगा-तट पर आते हैं, और राजा उन्हें ग्रहण करने के लिए सिर झुकाते हैं (श्लोक 9-11)।

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वान्-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥
मेधातिथिर्देवल आर्षिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनि-
द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥

अत्रिर् वसिष्ठश् च्यवनः शरद्वान् अरिष्टनेमिर् भृगुर् अङ्गिराश् च पराशरो गाधि-सुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ मेधातिथिर् देवल आर्षिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर् द्वैपायनो भगवान् नारदश् च

अर्थ: वहाँ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, गाधि-पुत्र विश्वामित्र, तथा राम (परशुराम); उतथ्य, इन्द्रप्रमद और इध्मवाह; मेधातिथि, देवल, आर्षिषेण, भारद्वाज, गौतम और पिप्पलाद; मैत्रेय, और्व, कवष, कुम्भ से उत्पन्न अगस्त्य, द्वीप में उत्पन्न वेदव्यास, तथा देवर्षि नारद आए। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 9-10)

इनके साथ अन्य श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि और अरुण जैसे राजर्षि भी आए। इतने ऋषि-कुलों के प्रमुखों को अपने समक्ष एकत्र देखकर राजा ने उनकी पूजा की और सिर धरती तक झुकाकर प्रणाम किया।

अन्ये च देवर्षिर्ब्रह्मर्षिवर्या
राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान् समेता-
नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥

अन्ये च देवर्षि-ब्रह्मर्षि-वर्या राजर्षि-वर्या अरुणादयश् च नानार्षेय-प्रवरान् समेतान् अभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे

अर्थ: और भी देवताओं, ब्राह्मणों तथा राजाओं में श्रेष्ठ ऋषि — अरुण आदि — आए; राजा ने इन विविध ऋषि-कुलों के प्रमुखों की पूजा की और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 11)

जब वे सब सुखपूर्वक बैठ गए, तब राजा ने पुनः प्रणाम किया और उनके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े होकर, निष्कपट हृदय से अपना अभिप्राय प्रकट किया।

राजा को प्रार्थना

तब राजा ने कहा। उन्होंने स्वयं को और अपने वंश को समस्त राजाओं में सबसे भाग्यशाली कहा, क्योंकि उनके चरित्र ने श्रेष्ठ आत्माओं की कृपा अर्जित की थी — यद्यपि उन्होंने विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया कि राजवंश प्रायः उस पवित्र जल से वंचित रहता है जिसने ब्राह्मणों के चरण धोए हों। उन्होंने कहा कि उन जैसे पापी और घर में गहरे आसक्त पुरुष के पास स्वयं भगवान्, समस्त विश्व के शासक, अब एक ब्राह्मण-शाप के रूप में आए हैं, जिन्होंने उनमें सांसारिक भोगों के प्रति एक कल्याणकारी विरक्ति जगा दी है। उन्होंने समागत ब्राह्मणों तथा गंगा देवी से प्रार्थना की कि वे उन्हें एक शरणागत आत्मा के रूप में स्वीकार करें जिसने अपना मन भगवान् में स्थिर कर दिया है, और उन्होंने तक्षक को — अथवा तक्षक के वेश में किसी को भी — इच्छानुसार डँसने का निमन्त्रण दिया, केवल यही याचना करते हुए कि तब तक ऋषिगण भगवान् विष्णु की कथाएँ गाते रहें। तब उन्होंने अपनी एक महान् प्रार्थना की।



सभा के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े होकर, राजा परीक्षित प्रार्थना करते हैं कि प्रत्येक भावी जन्म में उन्हें श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति, उनके भक्तों का संग, और समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री प्राप्त हो (श्लोक 16)।

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते

रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।

महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं

मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥

पुनश् च भूयाद् भगवत्य् अनन्ते रतिः प्रसङ्गश् च तद्-आश्रयेषु महत्सु यां याम् उपयामि सृष्टिं मैत्र्य् अस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः

अर्थ: मैं जिस-जिस योनि में जन्म लूँ, उसमें भी मुझे अनन्त भगवान् के प्रति पुनः-पुनः प्रेम-भक्ति, उनकी शरण में रहने वाले महान् आत्माओं का संग, और समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री प्राप्त हो। ब्राह्मणों को मेरा प्रणाम। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 16)

इस प्रकार कहकर, और राज्य का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय के कंधों पर रखकर, बुद्धिमान् राजा गंगा के दक्षिणी तट पर कुश के आसन पर, जिनके अग्र पूर्वाभिमुख थे, स्वयं उत्तर की ओर मुख करके बैठ गए। जब उस सम्राट् ने आमरण अनशन के व्रत के साथ अपना आसन ग्रहण किया, तब स्वर्ग में देवताओं के समूहों ने जय-जयकार किया और पृथ्वी पर हर्षपूर्वक पुष्प-वर्षा की, तथा दिव्य दुन्दुभियाँ बारम्बार बज उठीं। समस्त प्राणियों के कल्याण में सदा रत महर्षियों ने भी “साधु! साधु!” कहकर उनके संकल्प की प्रशंसा की।

एक अनिवार्य प्रश्न

ऋषियों ने राजा को आश्चस्त किया कि श्रीकृष्ण के इतने भक्त में ऐसा त्याग कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि भगवान् को पाने की उत्कंठा में उन्होंने वह सिंहासन त्याग दिया जिसके लिए अन्य राजा प्राण दे देते हैं। उन्होंने संकल्प किया कि वे तब तक राजा के साथ रहेंगे जब तक वे शरीर त्यागकर उस परम धाम को न प्राप्त कर लें, जो माया की पहुँच से परे और शोक-रहित है। उनके इन वचनों से — जो निष्पक्ष, मधुर और सत्य थे — प्रभावित होकर परीक्षित ने परब्रह्म से एकाकार हुए उन ऋषियों का अभिनन्दन किया, और भगवान् विष्णु की महिमा सुनने को उत्सुक होकर, उनके समक्ष वह एकमात्र पूछने योग्य प्रश्न रखा।

ततश्च वः पृच्छयमिमं विपृच्छे

विश्रभ्य विप्रा इति कृत्यतायाम् ।

सर्वात्मना प्रियमाणैश्च कृत्यं

शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥

ततश्च वः पृच्छयम् इमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इति कृत्यतायाम् सर्वात्मना प्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः

अर्थः हे ब्राह्मणो, आप पर पूर्ण विश्वास रखकर मैं अपने कर्तव्य के विषय में यह प्रश्न पूछता हूँ: भली-भाँति विचार करके बताइए कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सब परिस्थितियों में — और विशेषकर उसके लिए जो मरणासन्न है — शुद्ध एवं उचित मार्ग क्या है। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 24)

यही वह प्रश्न है जिस पर सम्पूर्ण शेष भागवत खड़ा है: उस व्यक्ति को क्या करना चाहिए जिसके पास जीने के लिए थोड़ा ही समय शेष है? यह वह प्रश्न है जिसका सामना प्रत्येक मरणशील प्राणी को एक दिन करना ही है, और परीक्षित इसे हम सबकी ओर से पूछते हैं।

श्रीशुकदेव का आगमन

उसी क्षण, मानो उत्तर के रूप में, वहाँ दिव्य शुक — व्यासपुत्र श्रीशुकदेव — पधारे, जो इच्छानुसार पृथ्वी पर विचरण करते थे, किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखते थे, और अपनी आत्मा के आनन्द में ही तृप्त थे।



युवा मुनि श्रीशुकदेव गोस्वामी, व्यास के पुत्र, सभा में पधारते हैं — सोलह वर्ष के एक अवधूत, स्वतन्त्र रूप से विचरण करते और खेलते बालकों से घिरे हुए (श्लोक 25)।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥

तत्राभवद् भगवान् व्यास-पुत्रो यदृच्छया गाम् अटमानोऽनपेक्षः अलक्ष्य-लिङ्गो निज-लाभ-तुष्टो वृतश्च बालैर् अवधूत-वेषः

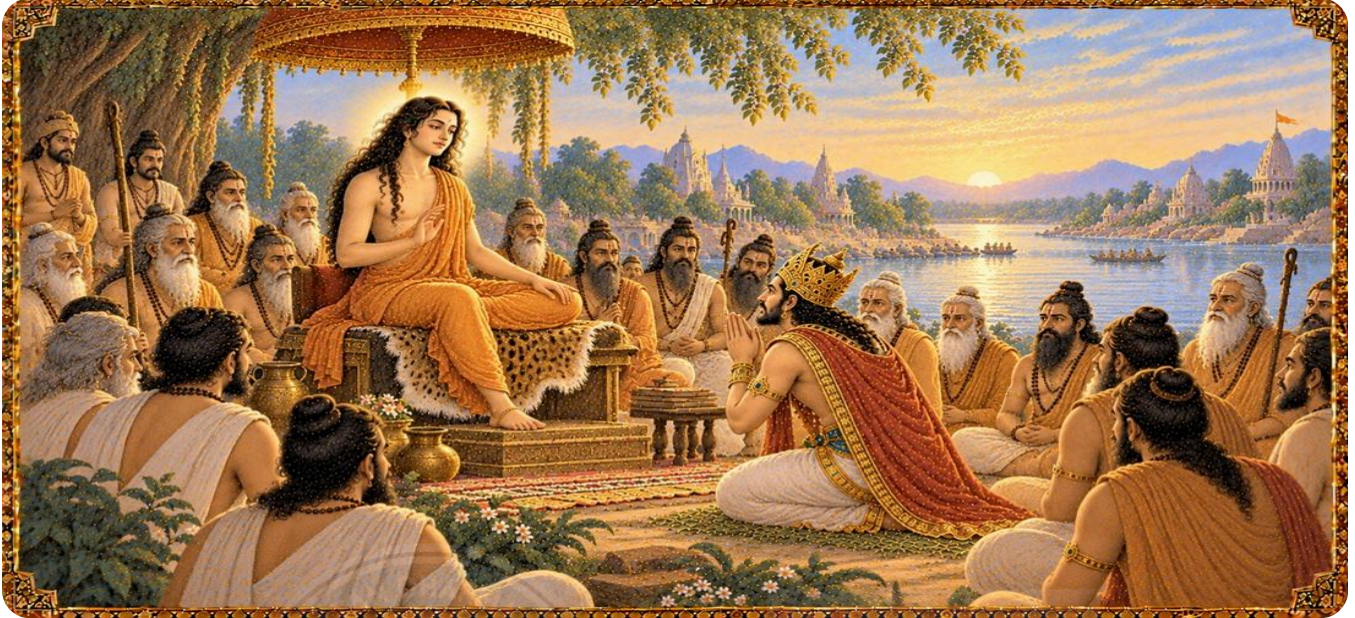
अर्थ: वहाँ व्यास के परम तेजस्वी पुत्र प्रकट हुए, जो इच्छानुसार पृथ्वी पर विचरते, उदासीन और आत्म-तृप्त थे, किसी वर्ण-आश्रम का कोई बाह्य चिह्न धारण नहीं करते थे, बालकों से घिरे हुए थे, और अवधूत का वेश धारण किए हुए थे। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 25)

वे केवल सोलह वर्ष के थे, जिनके चरण, हाथ और अंग कोमल थे, नेत्र विशाल, नासिका सुडौल और ग्रीवा शंख के समान थी — किसी श्रेष्ठ देवता के समान सुन्दर, यद्यपि वे अपने सौन्दर्य की कोई चिन्ता नहीं करते थे और ऐसे विचरते थे मानो समस्त सांसारिक सम्बन्ध त्याग चुके हों। यद्यपि उन्होंने अपने आध्यात्मिक तेज को एक निश्चित पथिक के वेश में छिपा रखा था, समागत ऋषियों ने उन्हें उनके लक्षणों से तत्काल पहचान लिया और उनके स्वागत में अपने आसनों से उठ खड़े हुए।

राजा विष्णुरात — परीक्षित, जिन्हें यह नाम इसलिए मिला कि गर्भ में उनके प्राणों की रक्षा स्वयं भगवान् विष्णु ने की थी — ने उस अप्रत्याशित अतिथि को सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनका सम्मान किया। बालक और उत्सुक जन हट गए, और सबके द्वारा पूजित होकर श्रीशुकदेव एक उच्च आसन पर विराजमान हुए। ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों और देवर्षियों के समूहों से घिरे हुए, वे उनके बीच ऐसे शोभायमान हुए जैसे ग्रहों और तारों के बीच पूर्ण चन्द्रमा।

मुनि के चरणों में

जब उस अमोघ-ज्ञानी मुनि ने पूर्ण शान्त होकर अपना आसन ग्रहण किया, तब राजा ने उनके पास जाकर, अपने सिर से उनके चरण छूकर, हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़े हुए। तब मधुर और विनम्र वाणी में उन्होंने श्रीशुकदेव से प्रश्न किया।



राजा परीक्षित, आसनासीन श्रीशुकदेव गोस्वामी के चरण छूते हुए, विनम्रता से मुनि से पूछते हैं कि मरणासन्न व्यक्ति को क्या सुनना, क्या जपना और क्या स्मरण करना चाहिए (श्लोक 31-38)।

परीक्षितुवाच

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।

कृपयातिथिरूपेण भवद्विस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥

परीक्षित् उवाच अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्र-बन्धवः कृपयातिथि-रूपेण भवद्विस् तीर्थकाः कृताः

अर्थ: परीक्षित बोले: हे ब्रह्मन्, आज हम कितने धन्य हैं! हम अयोग्य क्षत्रिय, जो सन्तों द्वारा सेवा किए जाने योग्य हैं, आपकी कृपा से, अतिथि रूप में आपके पधारने से पवित्र हो गए। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 32)

राजा ने विस्मय किया कि ऐसी आत्मा का मात्र स्मरण ही घर को पवित्र कर देता है, फिर उनके दर्शन, स्पर्श और चरण-प्रक्षालन की तो बात ही क्या; कि सन्त की उपस्थिति मात्र से गुरुतम पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे भगवान् विष्णु की उपस्थिति से दैत्य। उन्होंने मुनि के अनायास आगमन को इस संकेत के रूप में लिया कि पाण्डवों के सखा श्रीकृष्ण उन पर प्रसन्न हैं। तब उन्होंने अपने हृदय की आवश्यकता खोलकर रख दी: उन्होंने पूछा कि मरणासन्न पुरुष को क्या करना चाहिए? और इससे भी अधिक — सर्वत्र समस्त लोगों को क्या सुनना चाहिए, जिह्वा से क्या जपना चाहिए, मन में क्या धारण करना चाहिए, किसकी पूजा करनी चाहिए, और किससे बचना चाहिए? परीक्षित ने विस्मय किया कि इतने महान् मुनि तो गृहस्थ के द्वार पर गौ दुहने भर के समय के लिए भी विरले ही ठहरते हैं, फिर भी उनके अन्तिम दिनों में उनके पास पधारे।

इस प्रकार राजा के मधुर वचनों से पूछे जाने पर, बादरायणि श्रीशुक — धर्म के ज्ञाता — उत्तर देने को उद्यत हुए।

सूत उवाच

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।

प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ॥ ४० ॥

सूत उवाच एवम् आभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः

अर्थ: सूतजी बोले: इस प्रकार राजा द्वारा मधुर वचनों में सम्बोधित और पूछे जाने पर, बादरायण के परम तेजस्वी पुत्र, धर्म के ज्ञाता, उत्तर देने लगे। (स्कन्ध 1, अध्याय 19, श्लोक 40)

इन्हीं शब्दों के साथ प्रथम स्कन्ध अपने समापन को प्राप्त होता है। वह महान् उत्तर जो श्रीशुकदेव अब आरम्भ करते हैं — कि मरणासन्न पुरुष को, और वस्तुतः प्रत्येक प्राणी को, शेष समय कैसे बिताना चाहिए — आगे के समस्त स्कन्धों में उद्धाटित होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. शाप को भी कृपा-रूप में ग्रहण किया जा सकता है। परीक्षित अपने भाग्य से नहीं लड़ते; वे ब्राह्मण-शाप को स्वयं भगवान् का आगमन मानते हैं जो उन्हें आसक्ति से मुक्त करने आए हैं (श्लोक 4, 14)। जो विपत्ति-सा प्रतीत होता है, वही उनकी मुक्ति का साधन बन जाता है।
2. आसन्न मृत्यु भक्ति का निमन्त्रण है। उपचार खोजने के बजाय, राजा दोनों लोकों का त्याग करके सर्वथा श्रीकृष्ण के चरणों की ओर मुड़ जाते हैं (श्लोक 5, 7)। मृत्यु का बोध, उचित रीति से ग्रहण किया जाए, तो आत्मा की भगवद्-लालसा को तीक्ष्ण कर देता है।
3. तीर्थ और सन्त-संग साधक को पवित्र करते हैं। सन्त उन्हीं तीर्थों को पवित्र कर देते हैं जिनके वे दर्शन करते हैं, और परीक्षित अपने अन्तिम दिनों के लिए गंगा का वह तट चुनते हैं जो कृष्ण के चरणों की रज से पावन है (श्लोक 6, 8)। पावन स्थल और पावन संग अन्तिम कर्म में मन को सहारा देते हैं।
4. सर्वोच्च प्रार्थना भक्ति की ही प्रार्थना है। कुछ भी माँगने का अवसर पाकर राजा केवल भगवान् के प्रेम, उनके भक्तों के संग, और समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री की — प्रत्येक भावी जन्म में — याचना करते हैं (श्लोक 16)। यही भक्त की कामना का शिखर है।
5. एकमात्र पूछने योग्य प्रश्न। परीक्षित का प्रश्न — मरणासन्न पुरुष को क्या करना चाहिए, और सब लोगों को क्या सुनना, जपना और स्मरण करना चाहिए? — सम्पूर्ण भागवत का बीज है (श्लोक 24, 38)। इसे निष्कपट भाव से पूछना ही उत्तर का आरम्भ है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

हम अपने जीवन का बहुत-सा समय ठीक इसी क्षण से बचने की व्यवस्था में लगाते हैं — वह क्षण जब समय अल्प रह जाता है और कोई बाह्य वस्तु सहायता नहीं कर सकती। परीक्षित, संसार के सम्राट्, को ठीक सात दिन दिए जाते हैं, और वे एक चौंका देने वाला कार्य करते हैं: वे उन्हें एक उपहार मान लेते हैं। वे न तो उस बालक को दोष देते हैं जिसने शाप दिया, न ही उस क्रोध को जिसने उकसाया। वे नदी-तट पर बैठ जाते हैं और अपना मुख भगवान् की ओर कर लेते हैं। यहाँ उन सबके लिए एक शान्त शिक्षा है जो न सम्राट् हैं और न ही अपने सात दिनों को जानते हैं। भागवत किसी मृत्यु-शय्या की प्रतीक्षा नहीं करता; वह तो केवल इतना कहता है कि हम अभी वैसे ही जिएँ जैसे परीक्षित ने अन्त में जीना चुना — जो छोड़ना ही है उस पर पकड़ ढीली करते हुए, ज्ञानियों का संग खोजते हुए, और भगवान् के नाम एवं कथा से अपने घंटे भरते हुए। उनकी

एकमात्र प्रार्थना — प्रत्येक जन्म में भगवान् और भगवान् के भक्तों से प्रेम करने की — ऐसी प्रार्थना है जो हममें से कोई भी आज कर सकता है। वह नदी-तट, वे ऋषि, और वह युवा ईश्वर-प्रेषित गुरु — सब आज भी उस हृदय के लिए उपलब्ध हैं जो, राजा की भाँति, भगवान् की ओर मुड़ता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कुछ अविचल क्षण निकालकर वैसे ही बैठिए जैसे परीक्षित बैठे थे — स्थिर, अविचल, भगवान् की ओर उन्मुख। उन योजनाओं और चिन्ताओं को क्षण भर के लिए रख दीजिए जिन्हें आप कसकर पकड़े हैं, और धीरे-धीरे पवित्र नाम का जप कीजिए — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर राजा की प्रार्थना को अपना बना लीजिए: लाभ या पलायन की नहीं, अपितु केवल भगवान् के चिरस्थायी प्रेम, सन्त-संग के वरदान, और प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री की याचना कीजिए। इस त्रिविध प्रार्थना को अपने दिन में साथ ले चलिए।

उपसंहार

प्रथम स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत घूमता है। एक शापित राजा समर्पण का आदर्श बन जाता है: यह सुनकर कि मृत्यु सात दिनों में आ रही है, परीक्षित अपना राज्य त्याग देते हैं, गंगा-तट पर बैठ जाते हैं, और श्रीकृष्ण के चरणों में मन स्थिर करके आमरण अनशन का व्रत लेते हैं। उस युग के श्रेष्ठतम ऋषि उन्हें आशीष देने आते हैं, देवता पुष्प-वर्षा करते हैं, और राजा केवल अटूट भक्ति की प्रार्थना करते हैं। तब, मानो उनकी लालसा से आमन्त्रित होकर, युवा अवधूत श्रीशुकदेव गोस्वामी पधारते हैं — आत्म-तृप्त, तेजस्वी, संसार से उदासीन — और अपना सम्मानित आसन ग्रहण करते हैं। मुनि के चरणों में झुककर परीक्षित वह जिज्ञासा प्रकट करते हैं जिसका सामना प्रत्येक मरणशील प्राणी को कभी-न-कभी करना ही है: मृत्यु के द्वार पर खड़ा व्यक्ति कैसे आचरण करे, और सभी को क्या श्रवण, कीर्तन और हृदय में धारण करना चाहिए? इसी प्रश्न के साथ प्रथम स्कन्ध समाप्त होता है, और आगे जो उत्तर आता है वह आने वाले प्रत्येक स्कन्ध का कोष बन जाता है। हम भी, राजा की भाँति, जो कुछ आए उसे भगवान् के स्मरण का निमन्त्रण मानना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), प्रथम स्कन्ध, उन्नीसवाँ अध्याय, पृष्ठ 79–84।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ संक्षेप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सम्पूर्ण अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-1-adhyay-19-shukadev-goswami-ka-aagman.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

